अपने में ही गुम कहीं

शशि प्रकाशन मंदिर
बीकानेर

अपने में ही गुम कहीं

अशोक 'अनुराग'



शशि प्रकाशन मदिर
सादाणियों की गली
मोहतों का चौक
बीकानेर 334005 (राज)

ISBN 81 86435 25 5

कृति अपने में ही गुम कहीं

कृतिकार अशोक 'अनुराग'

सस्करण 2000

मूल्य नब्बे रुपया मात्र

आवरण अनिरुद्ध उमट

मुद्रक साखला प्रिण्टर्स बीकानेर

APNE MAIN HEE GUMA KHAIN

By Ashok ' Anurag

Rs 90 00

मैं नहीं रहूँगा
पल पल
मुझ को अपने मे
जीना चाहे
पर तिल–तिल
मुझ मे अपने को
मरने मत देना

नन्दकिशार आचार्य
के लिए

क्रम

सरहद पर सिपाही

शहादत 11
ठण्डी आग 12
वतन के लिए 13
उस वीर के चरणों पर 14
तुम्हारे कल के लिए 15
उस दर्द को कौन जानता 16
सिपाही की मौत 17
उस जाँबाज के कदमों में 18
उन्हीं के दम पर 20
सपनों का बनवास 21
मरते नहीं कभी 22
युद्ध का सच 23
धन्य हो नचिकेता 24
युद्ध में घाटी 26
खत के पुरजे 27
सरहद पर सिपाही 28
याद बिटिया की 29
इस पार या उस पार 30
ये कैसी सुबह हुई 31
वज्र सरहदें 33
जानता है सिपाही 34
जाग रहा है कोई 35
अर्जुन सारथी का मंतव्य 37
भूल न जाना उनको 38

लोरी एक मौन-सी

स्वीकार है मुझे 41
अभिशाप 42
कुछ और अधूरा 43
जिसे आकाश नहीं बाँध सका 44

याद 45
समय जैसे पतझड है 46
सिर्फ अहसास है 47
कहीं कोई आसरा 48
विवशता 50
कुछ प्यार 51
उस कागज की मानिद 52
इसी से भरा 53
अफसोस नहीं 54
दर्द से अलहदा 55
मानस की चौपाइयों-सा 56
अनलिखी इबारतें 57
लोरी एक मौन सी 58
ढूँढता रहा जिसे मैं 59
झरने की फुहार 60
नींद की झपकी कोई 61
होना ही है खत्म 62

यायावर आँख का सपना

सपना वह इसी में 65
उसके भीतर भी है 66
सिर्फ माँ जानती है 67
जागने पर उसके 68
लावरिश लाश 69
हरे घाव 70
सर्दी की रात 71
नगे घाव 73
नहीं जानता कोई 74
बाजार की आँखें 75
बस एक उदासी-सी 76
चेहरे दर चेहरे 77
ख्वाबों की कतरनें 78
साँसों की गहरी 80

सरहद पर सिपाही

(मातृभूमि पर प्राणार्पण करने वाले वीरों के प्रति)



शहादत

मृत्यु-
आखिरी सच
अन्तत सबको मरना है

पर काश!
हर मौत
बन सके शहादत
तो सचमुच वही मरना है।

ठण्डी आग

बुझा नहीं
ठण्डा है
हवा न दो
दबी हुई चिंगारियां
काफ़ी हैं इसे फिर से आँवाँ करने को

और सुनो।
आँवाँ केवल पकाता ही नहीं
जला भी सकता है
बचो इस ठण्डी आग से।

वतन के लिए

कटा लिए हैं पैर
खो दिये हैं हाथ
कब परवाह की माथे की ?

बस ! एक ही चाह
परवाह थी प्राणों में
वह वतन के माथे की !

उस वीर के चरणों पर

कुछ देर पहले जो
झुककर सरजमीं को
करता था सलाम
लगाता माथे तिलक

खून से सींची जमीं
झुकी है अब
करती सजदा
उस वीर के चरणों पर।

तुम्हारे कल के लिए

ससार से अलग थलग
ऊँचे हिमशिखरों पर
खून जमा देने वाली ठण्ड में
उठकर दुश्मन से लोहा लेता
कौन जाने
कोई होगया शहीद
खबर किसे
ले ली किसी ने हिमसमाधि
तुम्हारे कल के लिए

ससार सोता अपनी नींद।

इस दर्द को कौन जानता

देखते-देखते
आँखों के बीच
उग आयी
लोहे की छड़ें

हरी कोंपलो के
सीने में
नुकीले खंजर

अन्तत सरक़लम
दर्द भी चकित ?

पर हरे जख्मों से
टपकती बूँदों के
इस दर्द को कौन जानता
जो रह गयी खलिश
जिन्दगी कम पडने की।

(सेना के छ जवान 14 मई 99 को कारगिल के काकसर क्षेत्र मे गश्त के लिए जाने के बाद लापता हो गये। दुश्मनो ने उनकी ऑखें निकाल लीं इन्द्रियाँ काट दीं उन वीरों के प्रति।)

सिपाही की मौत

कल तक जिसकी
जिन्दगी तो काम आयी ही थी
आज
मौत और भी
बडा काम कर गयी

अधूरी है
वह जिन्दगी
जो मरकर न काम आये।

उस जॉबाज के कदमों में

पिता की आख का
करवाना था
ऑप्रेशन इस बार

बीमार मॉ की
करनी तो थी सार सभाल
पर न कर सका
अन्तिम दर्शन भी

बच्चे पिछडकर कर रह गये
समय पर नहीं
भरी जा सकी उनकी
फीस इस बार

आते वक्त शहर से
शूट व सेंडिल का भी
था बिटिया से वादा
इस बार

पत्नी से भी
कि मगल सूत्र जो टूट चुका
फिर नया वनवायेगा लौटकर
इस वार

पर
उसका हर वादा
वनकर रह गया
महज वादा।

अव
खून से सींची जमीं पर
खडे हैं साथी सिपाही
सिर झुकाये

उसकी वादशिकन से गमगीन
कि काश! इसने
हम से तो निभाया होता वादा?

उन्हीं के दम पर

तुम जो
अपने ऑगन में
खिलती कलियों
बढती कोंपलों को देखकर
नाज से
इतरा रहे हो

कभी
इस खयाल से भी
रूबरू हो
कि यह सब
है किसके दम से ?

सपनों को वनवास

हाथों से
मेंहदी का रग भी
अभी उतरा नहीं

आँखों में सोये सपनों ने
करवट भी
अभी ली नहीं
कि-
माथे का सिन्दूर
पिघलकर वह गया
हिमशिखरों पर
माँ की लाज बचाने

हथलेवे के कच्चे हाथों
दिया उसने कधा पति को
और
अपने सपनों को वनवास
जीवन से बडे
एक जीवन का आभास।

(हिमाचल प्रदेश (कसुम्पटी) के नायक राकेश कुमार जिन्हें विवाह सूत्र में बधे चद महीने ही हुए थे विवाह के बाद कारगिल मे वीर गति को प्राप्त होकर ही पुन घर लौटे। उनकी बहादुर पत्नी सुदर्शना जिन्होंने अपूर्व साहस का परिचय देते हुए परम्परा से हटकर अपने पति को कधा दिया।)

मरते नहीं कभी

मरा नहीं
सोया है नींद गहरी

जब भी देखेगा
आशंकित नजरें,
कुत्सित कृत्य
एक के बदले
फड़कने लगेंगी सहस्रों भुजाएँ
हर एक की रगों में
बहता लहू
होगा वही लहू

मरते नहीं कभी
वास्तव में ही जीते है जो।

युद्ध का सच

तिरंगे में सजाकर
दी जा रही अग्नि,
तोपों की सलामी,
पुष्प चक्रों से श्रद्धांजलि
गगनभेदी जयकारे-
शहादत पर
दीप्त सबके भाल।

बेवा की आँखों से बहते आँसू,
मासूम की पथरायी आँखें
माँ का करुण विलाप,
बहिन, बिटिया का झूरना-

आगे जीवन का अंधकार।

शहादत और त्रासदी
कितना मुश्किल है
एक बडे आदर्श के सामने
पहचानना युद्ध के इस सच को।

धन्य हो नचिकेता

नचिकेता
नाम है आग का
जो मौत को भी
  भस्म कर दे

कभी जाकर
स्वय जिसने
यम के जवडे में
दिया था हाथ
और
उससे तमाम वरदान पाकर भी
डटा रहा
सत्य के प्रश्न पर

धन्य हो नचिकेता।
जो हर जन्म में
सत्य के लिए
लगा देते हो जीवन दाव पर
इस वार भी
मौत का साया,

दुश्मन का भय
प्रलोभन के सहस्र
वरदान पाकर भी
तुम डटे रहे
मातृभूमि की आन पर
मृत्यु-सागर का मथन कर
ले आये अमृत्व
वह माँ
क्यों कर विचलित हो
धीर वीर ऐसे
पलते जिसकी कोख में ?

(फ्लाइट लेफ्टिनेंट के नचिकेता जो कारगिल में पाक समर्थित आतकवादियो के खिलाफ कार्यवाही के लिए गए व पाकिस्तान द्वारा बदी बना लिए गये।)

युद्ध में घाटी

वह माँ
अपनी जवान बेटी को
लगाती है कलेजे से
गूजते तोपों के धमाकों में
कर लेती ओट चट्टानों की
दानवी हाथ
बढते नजर आते
बेटी की ओर
चीख से गूँज उठती घाटी।

तुम तो माँ हो, घाटी।
जानती हो बेटी की अस्मिता
पर
इन पत्थरों को कौन
फिर से घाटी कर दे?

खत के पुरजे

बर्फीली पहाडियों को
पारकर
दुश्मन को मार गिराने तक
कब परवाह की प्राणों की ?

लहूलुहान हाथों से
चोटी पर फहराया तिरगा
ठावस की ली सास
तभी फिर-
दहक उठी गोलियों की आवाज
चीरती हुई
सिपाही की छाती

चिरनिद्रा में सो गया वह
माँ की आगोश में
उड रहे हें तो जेब से
खत के पुरजे
जो रात लिखा था
घरवालों को

और हाँ
सीने से निकली गोली
चीरती हुई गयी है
जेब में रखी
प्रेयसी की फोटो भी।

सरहद पर सिपाही

दोनों ओर के जवान
जानते हैं
कि मरना है
आखिर सिपाही ही

एक उसके भी
है माँ-सी माँ
राह देखती
पत्नी भोली-भाली
है उसके भी
घर पर एक बिटिया
पलकें चूम लेने को

पर फिर भी
मरता है सिपाही ही ?

याद बिटिया की

सगीनों की खनक
गोलियों की बौछार
बमों की गर्जना
जब थमती होगी

सुबह शीतल हवा का परस पाकर
कूकती कोयल
सिपाही को दिलाती है
याद बिटिया की
क्षणभर को
देह का सारा खून
उमड आता है
आँख में पानी बनकर
और
पलभर पहले
डटा था सरहद पर
जो पाषाण बनकर
उसके भीतर कुछ
पिघलने लगता है-
मोम बनकर।

इस पार या उस पार

जग में
मरता है सिपाही ही
इस पार का
या
उस पार का
जानते हैं दोनों

होती है खलिश-सी
कि घर के द्वार रह जाती है
दो आँखें उडीकती
            घूरती
क्या फर्क पडता है
वो आँखें-
इस वतन की हो
या
उस वतन की

सरहदों से कब बटी है माँ ?

ये कैसी सुबह हुई

बीती रात
करवट ले लेकर
गोलों के धमाकों से
उचटती रही नींद

सुना था
रात जितनी खौफनाक होती है
सुबह उतनी ही उजली
पर
देखता हूँ उठकर
ये कैसी सुबह हुई
मलबे के ढेर में
दफन है बस्ती

ऑगन जो गूँज रहे थे
बच्चों की किलकारियों से
सिमटे हैं-
शोक भी छाया में
मलबे पर पडा है
रबड की गुडिया का
क्षत-विक्षत शव
कटे हाथ, पैर, गर्दन।

हैरत ये-
उस बच्ची का क्या हुआ
जो रात सीने से लगाकर
सोयी थी इस गुडिया को ?

वज्र सरहदें

घर में पीछे रह गई
वह अकेली

सरहद पर
गोलियों की आवाज से
श्वासें अटक जाती हैं
हलक में उसकी

एक उमस-सी
व्याप जाती है भीतर
करवट ले लेकर
कटती है रात
ऐ खुदा!
टूट क्यों नहीं जाती
ये वज्र सरहदें
हर बार
टूटती है क्यों
नाजुक रगें दिल की ही?

जानता है सिपाही

बन्दूक से निकली गोली
नहीं छेदती केवल
एक आक्राता के
सीने को ही

लील जाती है-
किसी के माथे का सिन्दूर
बेध जाती है-
किसी माँ की कोख
तोड जाती है-
किसी मासूम की
आँखों में पलते सपने को भी।

दे जाती है
हर आँख
हर युग को आँसू
जानता है सिपाही
पर ?

जाग रहा है कोई

जाने कब
खो दिया हमने
सस्कृति की सवाहिकाओं को
छूता किसे है
अब आँख का पानी ?

भले आकाश नहीं मिटेगा
पर
होगी क्या उसमें
अबोध पुतलियों की पुलक ?
किसलयों की लाली ?
चिडियों की चहक ?

कौन भरेगा
उनके जलपात्र
किन नन्हें हाथों के बिखराव से
आगन में पायेगी वो चुगा
पायेगी जीवन ?
रोज सूना
उगेगा, आथेगा सूरज
या फिर
आथ ही जायेगा ?

सुनसान कस्बे, घाटियों पर
पॅख फैलाये व्याप जायेगा
काल
काल
काल

जाग रहा है कोई इस उजाड में ?

अर्जुन-सारथी का मतव्य

पक्ष में नहीं युद्ध के
पर
बने कोई आक्राता तो
मार खाते रहे तब भी ?
'नहीं'
तो फिर लडे ?
अहिंसा
शांति
सस्कृति
क्या होगा सबका ?
तो ?

इतिहास साक्षी है
बहुत बार
आदर्श के लहुलूहान होने पर
यथार्थ ने उसकी
मरहम-पट्टी की है

उसके मतव्य काफी नहीं
तो रथ पर बैठे
प्रतीक्षा करते रहो
फिर से पत्थर युग की।

कोन भरेगा
उनके जलपात्र
किन नन्हें हाथों के बिखराव से
आगन में पायेगी वो चुगा
पायेगी जीवन ?
रोज सूना
उगेगा, आथेगा सूरज
या फिर
आथ ही जायेगा ?

सुनसान कस्बे, घाटियों पर
पॅख फैलाये व्याप जायेगा
काल
काल
काल

जाग रहा है कोई इस उजाड में ?

अर्जुन-सारथी का मतव्य

पक्ष में नहीं युद्ध के
पर
बने कोई आक्राता तो
मार खाते रहे तब भी ?
'नहीं'
तो फिर लड़े ?
अहिंसा
शांति
सस्कृति
क्या होगा सबका ?
तो ?

इतिहास साक्षी है
बहुत बार
आदर्श के लहुलूहान होने पर
यथार्थ ने उसकी
मरहम-पट्टी की है

उसके मतव्य काफ़ी नहीं
तो रथ पर बैठे
प्रतीक्षा करते रहो
फिर से पत्थर युग की।

भूल न जाना उनको

तुम्हारे चूजे
कल पख फैला सके
खुले आकाश में
इस वास्ते आज
जिन्होंने उजाड लिया
आशियाँ अपना

तुम भी कल
भूल न जाना उनको।

लोरी एक . मौन-सी

स्वीकार है मुझे

मैं न सही
तुम्हारा ललाट
जिस पर चदन लगा
तुमने खुद को
गौरवान्वित महसूस किया

तुम जब भी शर्मसार हुए
तुम से पहले जमीं कुरेद
मैंने ही तो सर दिया
भले पैर का अगूठा ही सही
स्वीकार है मुझे।

स्वीकार है मुझे

मैं न सही
तुम्हारा ललाट
जिस पर चदन लगा
तुमने खुद को
गोरवान्वित महसूस किया

तुम जव भी शर्मसार हुए
तुम से पहले जमीं कुरेद
मैंने ही तो सर दिया
भले पेर का अगूठा ही सही
स्वीकार है मुये।

अभिशाप

धूल रहे
धूल बनकर ही
न सिर चढे
ये कायदा सही

पर
न देख सकती हो
सपना तक
किन्हीं पैरों का
तो ये अभिशाप नहीं ?

कुछ और अधूरा

हर बार
तुमसे मिलकर हो जाना चाहता
मैं पूरा

चाहता इस पीडा से मुक्ति

क्यों होता हर बार
मिलकर उतना ही हो जाता
और अधूरा।

जिसे आकाश नहीं बाँध सका

तुमने कब सुना
शब्दों से बाहर कुछ भी
होंठ जितने हिले
वहीं तक तो रही

पर
होंठों से बाहर
जिसे आकाश नहीं बाँध सका
मेरे कहने का तो
सदा वही अर्थ रहा।

याद

तुम्हारी याद का
हो आना

ऐसे
जैसे-
सर्दियों की सुबह
धुध में दुबकी
चिडिया के पँखों को यकायक
धूप का छू जाना।

समय जैसे पतझड है

समय जैसे पतझड है
यरी जितनी ही पत्तियाँ
पीत होकर

लहलहाता गया उतना ही
चेहरा कोई
स्मृतियों की सूखी
डठलों पर

कोंपलो-सा फूटा।

सिर्फ अहसास है

बिल्कुल उदास-सी
शाम

रेतीले उजाड में
कमेडी की डूबती गूज के सिवा
कोई न तोडता हो
मोन

ओर
उसके स्मरण के अलावा
हृदय में कोई स्पन्दन न हो
तो उस अहसास को
भला क्या नाम दोगे ?

कहीं कोई आसरा

निश्चित था
सफर से पूर्व ही
तुम लौट आओगे
फिर भी-
पता चलता है
सर्दी-गर्मी हर ऋतु
गुजर जाने के बाद
कि शेष और शेष कौन बचा
मौसम की मार झेल

ओ पाखी !
देती हूँ पर्वाज
तुम्हारे पँखों को
नाप आओ
धरती ओ आकाश तलक
रोही का एक-एक गाछ
सूख जाये जब
चूक जाये सब
न बचे
कहीं कोई आसरा
तो लौट आना
झुलसते टीबों बीच
बाँह पसारे खडी होगी
यह खेजडी
तुम्हें आलिंगन में लेने को।

विवशता

पत्ता
जो टूटकर गिरा
नहीं हुआ कुछ
तो डठल पर
ओकमर ही सही
पानी की बूद क्यों ?

किसी मेड पर
जमने के बाद
वर्षा में भीगने पर ही सही
उसासें तो भरता होगा
शाख पर लहराने का सुख
उसमें भी

और
न लौट सकने की विवशता से
होता होगा
क्या कुछ नहीं ?

कुछ प्यार

वारहा कुछ प्रेम
लिखे जाते हैं कागजों पर
कुछ—वाणी से
कुछ—आलिगन से
थोडा और हुआ
तो आँखों के पानियों में ही
लहरभर

कुछ एक हाथ से दूसरे हाथ
होते रहते फूल बनकर
और एक दिन
किताबों के सफ़्हों में दम तोड
फूल की ही मानिद
हो जाता वह प्यार

और छूटकर रह जाता
इन सबसे वाहर जो
उसे जिन्दगी के
किन सफ़्हों में ढूढे ?

उस कागज की मानिंद

अब तुम
उस कागज की मानिंद रह गई हो
जिसे वर्षों रखे रहा
हिफाजत से
मैं बन्द लिफाफे में

जब देखता हूँ खोलकर
कागज तो अब भी है
पर हर्फों की स्याही
धुल चुकी।

इसी से मरा

तुमने प्यार दिया
मैं जिया

एक दिन इसी से मरा
क्यों कि मैंने इसे
रतिभर भी
न कम होने दिया।

अफसोस नहीं

अब
ये आखें
न भी रहे
अफसोस नहीं

तुम्हारी आखों से
दुनिया देखना
अच्छा लगता है।

दर्द से अलहदा

लिख लिये गये कागज
सोचते हैं
देखकर कोरे पन्नों को
काश ! अब तक
और
पन्ने जो कोरे रह गये
जी लेना चाहते हैं साथ को
स्याही के दर्द से अलहदा।

मानस की चौपाइयों-सा

गर वो हाथ ही थे
रहे जिनमें
ये हाथ कुछ देर

तो फिर ये सुगंध ?
बाद उसके
अब भी इनसे
मानस की चौपाइयों-सा
झर रहा है क्या ?

अनलिखी इबारतें

वो रची
हथेलियाँ ही थीं
तो उन फूल भरे
गुलमुहरों का जिक्र क्यू करें
जो लिख रहे थे
जाने कैसी इबारतें अनलिखी
आकाश के नाम।

लोरी एक मौन-सी

वो हथेलियाँ
प्रकृति के
हाथों की
एक नाजुक थपकी का
अहसास-सी

मृदु लोरी एक मौन-सी
थपकाकर
नींद में सुलाती हुई।

ढूढता रहा जिसे मैं

और भाव हो भी
    किस विद ?
लिपि ही होती है लिखी
पर कहॉं वह
ढूढता रहा जिसे मैं
    इस लिपि में ?

झरने की फुहार

जेठ की
तप्त मरुधरा
भट्टी की लो-सी
आग उगलती हवा
ऐसे में-
किन्हीं दो आँखों के
देखने का सुकून

जमीं पर गिरकर
उठते झरने की फुहार-सी
गुजर गयी
मेरे रोम-रोम में।

नींद की झपकी कोई

ऐसे ही
तुम्हारी याद हो आयी

दिन भर
हल जोतकर
थके हारे किसान को
खेजडी की छाँह तले
पलभर को लग जाए
जैसे
झपकी कोई।

होना ही है खत्म

जिसकी हो गई शुरुआत
कहीं से भी
वो होना ही है खत्म

जानकर फिर
न होने के लिए
हम क्यों
कोई शुरुआत करे ?

तुम समझती हो
मेरे प्यार का अर्थ ?

यायावर आँख का सपना

सपना वह इसी में

फुटपाथ किनारे
बिखेर कर झोली
दिनभर में किये ढेर
कथों पर करती सुई टेब
जानते हुए कि
किसी काम नहीं आने
सीलने पर भी ये

पर
पूरा होता
सपना वह इसी में
जो था घर बसाने का।

उसके भीतर भी है

बिखरे हुए बालों को
कसती हुई
आचल की देकर ओट
दूध पिलाती
खींचकर पल्लू
चिपकाकर छाती के
सो जाती
फुटपाथ किनारे
लोगों की नजर से बेखबर

उसके भीतर भी है
एक माँ
जो 'भावी' को
दे जाना चाहती
अपनी आँख का सपना
भले धुंधियाया ही सही।

सिर्फ मॉ जानती है

भूख से मर रहा बच्चा
उस सूखे चाम को निचोड
पा लेना चाहता सजीवनी
बूदभर

पर
उस हड्डियों के ढाचे से
चाहकर भी नहीं आ रहा
ओकभर

वह जानता है सिर्फ भूख
जानता सिर्फ मरने की पीडा
पर
जीवन की पीडा ?
वह सिर्फ माँ जानती है।

जागने पर उसके

उसके सोने में
कुछ जाग रहा है
भीतर
जो नहीं जाग सकता
जागने पर उसके।

लावारिश लाश

वह
कई दिनों से
देखा जाता
चौराहे के पीपल नीचे
नहीं जानता कोई

पिछली रात ठण्ड से मर गया

पहचान घर में
'कॉलम' पूरा कर
कर दिया गया सस्कार
अखबार में छपा-
'लावारिश लाश' जो था वह
और
सास चल रही थी तब तक?

हरे घाव

जहा तहा
लीतरों से झाकते अग
चुभते आँखों में
हरे घाव से

रोती कभी दहाड मारकर
हसती कभी ठहाके से
दोडती सरपट कभी
गिरती फिर पछाड से

दात निपोरते युवा
चिढाते बच्चे हर सू
'पगली' है।

सर्दी की रात

वह बटोरकर झाड-चकाड
निकाल लेना चाहता ठिठुरन
जो धस चुकी
गहरे हड्डियों तक
पर
ठण्ड है कि जमा रही घुईं भी

धुध है कि रेवड
बुझती ही नहीं
जिसकी भूख
रातभर चरकर लकडियों की पत्तियाँ

बचे खुचे घोचे बटोरकर
करता तर्पण
देता पूर्णाहुति
पर भूख

मुट्ठीभर राख में
सिमट चुके गट्ठरों से
करता चूचाड
खिसकती राख
पलभर ठिठुराये अगों को
दे जाती
अनचीन्हें अगों की छूअन-सा ताप
पर भूख

खिसकता और जरा
धूईं के पास
राख ने अब छा लिया
पेरों को भी

और
वह आमाद है
धूईं में
पूरा ही झोंक दे अपने को
पर भूख
पर आँच

नगे घाव

अँधेरा ही आँखें
नहीं चाह
जिनमें अब रोशनी की

ताकता पथ दूर तक

नगे घावों पर
लपेटकर लीरे
होता फिर खडा चलने को
पर
रोकती पेर, टीस घावों की
उलझकर खासी में
थूकता खखार
लेप देता सडक को भी
अपनी जिन्दगी की तरह

चलता फिर रिरियाता
पथ अनन्त

नहीं जानता कोई

वह घटों
बैठी रहती
गुमसुम खोयी अपने में
नहीं जानता कोई
टटोलती रहती जो

बाद मरने के
झोली से
एक घिसा हुआ कागज मिला
जिस पर मडी थी
छाप उसके इक्लौते बेटे की
जो
आजादी के बाद की
पहली लडाई में
हो गया था शहीद

अच्छा रहा
हम उसे पगली ही समझते रहे
नहीं ?
कौन उठाता भार
वह भार ही तो थी
नहीं ?

बाजार की आँखें

नारियल की जोट-सी
रुखी जटायें
छितरायी बेतरतीब
घूमती आँखें बेसब्र
इस कूडेदान से
उस कूडेदान
चीकट पूरों से थाकते
मटियाये अगों की कौंध
वीभत्स

वह छाटती कचरा
ढूढती पोलिथिन
बाजार की आँखें
ढूढती उसमें यौवन।

वस एक उदासी-सी

न खोफ है नयी वस्ती का
न याद ही पुरानी कोई
वस एक उदासी-सी
उतर आयी है आँखों में
जो सदा है अपने साथ
ये शहर हो
या
वो शहर
हाल यही होना है
अपना हर शहर।

चेहरे दर चेहरे

चेहरे दर चेहरे
इतने चेहरे
कि चेहरों के पीछे चेहरे
या
अपने ही चारों ओर
जड दिये गये हैं शीशे ?
कोई आवाज क्यू नहीं
चेहरों के वियावान में ?

ख्वाबों की कतरने

मरते वक्त
मुट्ठी में कसी थी
उसकी झोली

अग्नि देने से पहले
उचित ही था अलग करना
पर अब
पकड़ और भी कस चुकी
बामुश्किल छीनी जा सकी
उससे वह

ये देखना भी
लाजिमी था
आखिर क्या होगा उसमें
जिसे नहीं छोडना चाहती
वह मरकर भी

देखकर
हँसे लोग
सिर पीटा-
'ठूसी थी क्याय कातरे अनगिनत'

भला देखता भी कौन
वो ख्वाबों की कतरने
जिन्दगी देकर भी
जोडी नहीं जा सकी जो।

सासों की गठरी

किसने माँगा था
ये स्पन्दन,
उस पर साँसों की गठरी ?
पर
माँगे तो दिया होता
कहीं ठाँव

तुम भी
मेरी तरह कितने
विवश और दरिद्र निकले
दरिद्र नारायण !